THE TIMES OF INDIA

Date:13-02-24

No Law On Price

Legal guarantee of MSP is not workable. Farmers should give up on it. GOI should not budge

TOI Editorials

With Lok Sabha elections looming, some farm organisations decided this is a good time to try and see if GOI can be arm-twisted to give more goodies. Their list of demands can be broken up into impractical and doable.

Legal guarantee is a mirage | Farmers want a legal guarantee on minimum support price (MSP) for crops. This is the most important demand and one that keeps recurring. It's also the most impractical. Any guarantee is just a promise on paper. Experience shows it can't be implemented.

Show me the money | GOI announces MSP for 22 crops. For most of them, the support price remains on paper and farmers receive the price determined by demand and supply conditions. It's mainly in two crops, paddy and wheat, that MSP works. For all practical purposes, MSP in food crops is a cereal show. It's all about procurement | It is procurement by govt that gives MSP meaning. Falter on procurement, MSP loses relevance. Let's take govt price movements of paddy, wheat and bajra – and how they work out on ground.

Between 2014-15 and 2023-24, MSP of paddy (common variety) increased by a compound annual growth rate of 5.4%. Wheat during the same period, increased by 5.1%. It's bajra where MSP increased more substantially at a compound growth of 8% – because GOI is promoting bajra.

Farmers bet on real promises | Normally, a faster increase in MSP should have nudged farmers to switch to growing more bajra at the expense of paddy. Instead, the area under bajra declined by 24% between 2011-12 and 2021-22. For rice and wheat, area under cultivation recorded a modest increase. For all coarse cereals, area under cultivation fell during this period. It indicates that farmers are pragmatic. They respond to price signals when backed by procurement.

Remove irritants | The meetings between govt and farmers should focus on solving issues such as withdrawal of police cases from earlier protests and release of seized tractors. Govt had promised to do so and should implement it.

Legal guarantee of MSP is a bad idea and should be buried for good.

THE HINDU

Date:13-02-24

The real travesty

A Governor who profoundly disagrees with state govt. should not stay in office

Editorial

The Governor's customary address to the legislature at the first session of every year is being increasingly politicised. More often than not, those responsible for such unseemly controversies overshadowing the solemn occasion are the incumbents in Raj Bhavan. In the latest instance, Tamil Nadu Governor R.N. Ravi has expressed his inability to read out the address prepared by the DMK-run government, citing what he termed "misleading claims and facts" in numerous passages. Reading them out, he claimed, would have made the Governor's address "a constitutional travesty". Compounding this constitutional mischief with a partisan claim, he sought to make much of the fact that the national anthem is played only at the end of the address and not at the beginning also. Anyone who understands the Governor's role in a parliamentary democracy will know that it is the one declining to read out the address prepared by an elected government who reduces the address to a travesty. Governments are run by parties that contest elections on a political platform, and it is only to be expected that they would seek to trumpet their achievements, real or exaggerated, in policy statements. It is the role of the political opposition and the people to judge the content of the address, and not that of the Governor.

A simple test to ascertain the tenability of Mr. Ravi's claim that he declined to read out the customary address on factual and moral grounds is to raise the question whether either the President or a Governor in a Bharatiya Janata Party-ruled State would ever do so. He did not spell out what exactly the misleading or factually wrong points were, but it is not constitutionally sustainable to claim that the Governor's address should contain no criticism of the Centre or make no policy pronouncements against the Centre's policies. However, his point that the Speaker should not have launched a tirade against him after reading out the Tamil version of the Governor's prepared speech is justified. Such conduct by constitutional functionaries detract from the Assembly's dignity. The larger issue is still the propensity of Governors to act as political agents of the ruling party at the Centre. It is an unfortunate feature of India's constitutional system that the country is never short of grey eminences eager to occupy gubernatorial office, but once appointed, they are equally eager to enter the political thicket. It is as if they believe that their duty is to obstruct and undermine State governments run by political adversaries. The real travesty is not in a formal address containing questionable claims, but in a Governor who disagrees profoundly with its policy while remaining in office.

दैनिक भास्कर

Date:13-02-24

नियुक्ति से पहले जजों की परीक्षा व गरिमा का प्रश्न

संपादकीय

हाई कोर्ट्स न्याय प्रणाली के दूसरे अंतिम संवैधानिक कोर्ट्स हैं। अगर इनके जज रिटायरमेंट के बाद राज्य उपभोक्ता आयोग अध्यक्ष के रूप में पांच साल के लिए नियुक्ति चाहते हैं तो उन्हें अफसरों द्वारा आयोजित लिखित और मौखिक परीक्षा देनी पड़ रही है। जरा सोचें, जज रहते हुए ये 'मी लॉर्ड्स हर मुद्दे और किसी भी बड़े से बड़े अधिकारी के खिलाफ फैसला सुना सकते हैं। इस विषम स्थिति का संज्ञान जब सीजेआई की बेंच ने लिया और सॉलिसिटर जनरल से पूछा कि क्या कोई आत्म-सम्मान वाला जज ऐसी परीक्षा में बैठेगा? तो देश के दूसरे सबसे बड़े सरकारी वकील ने भी उनकी राय से इत्तफाक रखा। लेकिन उन्होंने कहा कि यह प्रक्रिया तो इसी कोर्ट की एक बेंच के पिछले मार्च के आदेश के अनुपालन में नियम बदल कर शुरू की गई। जाहिर है कोर्ट का उक्त आदेश इस अंदेशे को ध्यान में रखते हुए लाया गया होगा कि बिना किसी मानक के सरकार अपने प्रिय 'मी लॉड्स' को रिटायरमेंट के बाद अगले पांच वर्ष के लिए नियुक्त करने लगेगी। आज भी यह आरोप शीर्ष कोर्ट्स के जजों को लेकर भी आम होने लगा है कि तमाम आयोगों और प्राधिकरणों में रिटायर्ड जजों की नियुक्ति संदिग्ध आधार पर होती है। लेकिन सीजेआई का कहना था कि परीक्षा से हाई कोर्ट्स के जजों की गरिमा पर असर पड़ता है और दूसरे, स्वाभिमानी जज इस प्रक्रिया से नहीं गुजरना चाहेंगे, जिससे राज्य उपभोक्ता आयोग की गुणवत्ता पर सवाल उठेगा। सीजेआई ने सलाह दी कि सरकार एक वाद दायर करे ताकि कोर्ट के मार्च वाले फैसले को बदला जा सके। यह ठीक है कि 'मी लॉड्स' की गरिमा रिटायरमेंट के बाद भी बनी रहनी चाहिए पर गरिमा बचाना व्यक्ति के हाथ में है न कि नियम या संस्थाओं की शक्ति में।

जनसत्ता

Date:13-02-24

कूटनीतिक कामयाबी

संपादकीय

कतर में मौत की सजा पाए भारतीय मूल के आठ पूर्व नौसेना अधिकारियों की रिहाई निस्संदेह भारत की बड़ी कूटनीतिक कामयाबी है करीब डेढ़ वर्ष पहले इन अधिकारियों को इजराइल के लिए पनडुब्बी तकनीक की जासूसी करने के आरोप में गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया था। इसकी सूचना न तो भारतीय दूतावास, और न उनके परिजनों को दी गई थी। दूसरे स्रोतों से जब उनके परिजनों को इसकी जानकारी मिली तो उन्होंने भारत सरकार से गुहार लगाई। मामला प्रकाश में आने के बाद भारत सरकार का विदेश मंत्रालय सक्रिय हुआ और इस संबंध में मध्यस्थता और बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ था, प्रधानमंत्री ने भी वहां के शासक से इस संबंध में बात की थी। इसका असर यह हुआ कि करीब दो महीना पहले कतर में भारत के राजदूत को इन गिरफ्तार भारतीय नागरिकों से मिलने की इजाजत दी गई और फिर उनकी फांसी की सजा को कैद में बदल दिया गया। अब कतर सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया है, मगर अभी तक मामले की ठीक-ठीक जानकारी सार्वजनिक नहीं की है। गौरतलब है कि ये भारतीय नागरिक नौसेना में अपनी सेवाएं दे चुके थे और उनमें से कई वरिष्ठ पदों पर रहे थे। अवकाश प्राप्त करने के बाद कतर की एक निजी नौसेना कंपनी के लिए सेवाएं दे रहे थे।

सैन्य परियोजनाओं में दुश्मन देशों के लिए जासूसी के मामले कोई नई बात नहीं है। इसके लिए सरकारें अपना पुख्ता निगरानी तंत्र रखती है। कतर जैसे देशों में ऐसे अपराधों के लिए मौत की सजा का प्रावधान है, इसलिए जब भारतीय नागरिकों पर जासूसी का आरोप लगा, तो वहां की अदालत ने कड़ी सजा सुनाई थी। हालांकि यह मामला इसलिए सबको हैरान करने वाला था कि जिन अधिकारियों को फांसी की सजा सुनाई गई, ये भारतीय नौसेना के जिम्मेदार पदों का निर्वाह कर चुके थे और सैन्य परियोजनाओं की जासूसी के अंजाम से अच्छी तरह वाकिफ थे उनसे ऐसी असावधानी या किसी लोभ में काम करने की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। भारत सरकार का विदेश मंत्रालय अभी पूरे मामले की तह में जाने का प्रवास कर रहा है, पर प्रथम दृष्टया वही लगता है कि जरूर कतर सरकार के निगरानी तंत्र से जासूसी प्रकरण में तथ्य जुटाने को लेकर कोई चूक हुई थी। कई बार मुख्य साजिशकर्ता कोई और होता है और शक के आधार पर उसमें दूसरे लोग भी फंस जाते हैं।

कतार के साथ भारत के संबंध बहुत मधुर है। पिछले हफ्ते ही उसके साथ भारत ने बीस वर्षों के लिए प्राकृतिक गैस आपूर्ति का बड़ा करार किया है। कई लोग पूर्व नौसैनिकों की रिहाई को इससे भी जोड़ कर देख रहे हैं, मगर कोई भी सरकार व्यापार के लिए अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा से ऐसा समझौता नहीं कर सकती। सच्चाई तो यही है कि कतर सरकार ने इन पूर्व नौसैनिकों को गिरफ्तार करने और सजा सुनाने में कुछ जल्दबाजी दिखाई। उसने नियमों के मुताबिक भारत को इस मामले से अवगत नहीं कराया न आरोपी पक्ष को अपनी सफाई का मौका दिया। दूसरे सूत्रों के मिली जानकारी के आधार पर भारत सरकार ने अपने नागरिकों की रिहाई की कोशिश शुरू की थी। अगर अंतरराष्ट्रीय अदालत में इसे चुनौती दी जाती तो कतर का पक्ष कमजोर सावित होता। फिर अगर सचमुच भारतीय नागरिकों की जासूसी में संलिप्तता रही होती और उसके पुख्ता प्रमाण कतार सरकार के पास होते, तो वह उसे छिपाने का प्रयास नहीं करती।

राष्ट्रीय सहारा

Date:13-02-24

किसान बनाम सरकार

संपादकीय

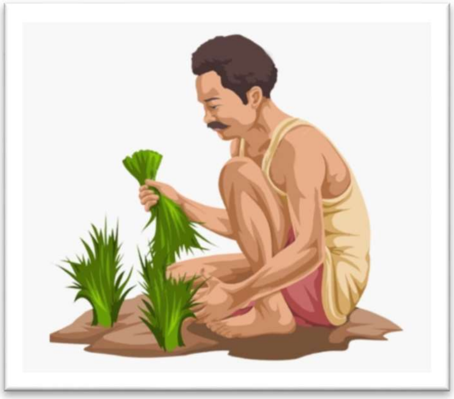

किसान 2020-21 की तरह इस बार फिर दिल्ली कूच कर रहे हैं। इसलिए इसे किसान आंदोलन का पार्ट दो कहा जा रहा है। राजधानी के आसपास के प्रदेशों के अलावा सूदूर मध्य प्रदेश के किसान भी लंबे समय तक राजधानी के घेराव की तैयारी के साथ आ रहे हैं। पिछले अनुभव फिर से न दोहराए जाएं इनके लिए सरकार और प्रशासन की तैयारी भी उसी तरह से है। किसानों को रोकने के लिए तमाम वैधानिक उपाय किए जा रहे हैं। दूसरी तरफ, सरकार के मंत्री किसानों से वार्ता जारी रखे हुए हैं। सोमवार की शाम भी यह बातचीत चंडीगढ़ में हो रही है। इसके नतीजे पर देश की नजर रहेगी। सवाल है कि किसान क्यों बार-बार आंदोलन पर उतारू होते हैं? इसलिए कि उनकी जायज मांगें भी पूरी नहीं हो पा रही हैं। पहली मांग सभी फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने की है। इसके साथ 12 मांगें हैं। इनमें प्रमुख हैं स्वामीनाथन कमेटी की सिफारिशें लागू करने, किसानों और मजदूरों की संपूर्ण कर्जमाफी, भूमि अधिग्रहण कानून 2013 को फिर से लागू करने, किसानों से लिखित सहमति लेकर चार गुना मुआवजा दिलाने, विश्व व्यापार संगठन से हटने और सभी मुक्त व्यापार समझौतों पर प्रतिबंध लगाने, किसानों और खेतिहर मजदूरों को पेंशन देने, बिजली संशोधन विधेयक 2020 रद्द करने, नकली बीज, कीटनाशक और उर्वरक बनाने वाली कंपनियों पर सख्त जुर्माना लगाने और बीज की गुणवत्ता में सुधार करने, मिर्च, हल्दी और अन्य मसालों के लिए एक राष्ट्रीय आयोग का गठन करना है। इनमें विश्व व्यापार मसला छोड़ दिया जाए तो ऐसी कोई मांग नहीं है, जिन्हें यह सरकार पूरी नहीं कर सकती है। हैट्रिक बनाने की मंसूबा रखने वाली नरेन्द्र मोदी सरकार से अपनी मांगें मनवाने का यह अच्छा मौका जान कर दिल्ली चलो का आह्वान किया गया है। इस समय सरकार को झुकाया जा सकता है। इसलिए सरकार रक्षात्मक मूड में रह सकती है और किसानों की कुछ मांगें मान सकती है पर एक बैठक में कोई दीर्घकालिक समझौता नहीं होगा। मोदी सरकार की कार्यशैली के जानकारों का ऐसा मानना है। दूसरे, पिछले साल हुए हिंदी पट्टी के तीन राज्यों के किसानों का भाजपा के पक्ष में जम कर वोट करने का उदाहरण भी है। इसलिए सरकार किसानों के साथ ढिठाई कर सकती है, लेकिन इस बार रिस्क अधिक है। अगर उसने फिर से उन्हें थका देने की रणनीति रखेगी तो उसे घाटा हो सकता है। उसे किसानों की जायज मांगों पर विचार कर उन्हें संतुष्ट करना चाहिए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:13-02-24

नजीर बनी पूर्व नो सैनिकों की रिहाई

शशांक, (पूर्व विदेश सचिव)

कतर में मौत की सजा पाए आठ पूर्व भारतीय नौसैनिकों की रिहाई राजनयिक ही नहीं, राजनीतिक तौर पर भी एक बड़ी नजीर है। जब इन पूर्व नौसैनिकों को कथित जासूसी के मामले में मृत्युदंड की सजा सुनाई गई थी, तभी से कूटनीतिक स्तर पर इनकी रिहाई के प्रयास शुरू हो गए थे। इसमें बड़ी सफलता तब मिली, जब इनकी सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया गया, पर रिहाई तब भी मुश्किल थी, क्योंकि इन पर राष्ट्रद्रोह का मुकदमा चल रहा था। नतीजतन, भारत में राजनीतिक स्तर पर प्रयास शुरू हुए और खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मोर्चा संभाला। पिछले साल दिसंबर में संयुक्त अरब अमीरात में उन्होंने कतर के शेख तमीम बिन हमाद अल-थानी से निजी मुलाकात भी की।

दोनों शीर्ष नेताओं की कॉप-28 शिखर सम्मेलन से इतर हुई इस मुलाकात के बाद माना जाने लगा था कि जल्द ही इन भारतीयों की रिहाई हो सकती है। कहा जाता है कि शेख यह समझने लगे थे कि भारत के किसी दुश्मन देश की शह पर यदि भारतीय नागरिकों को कतर की जेल में रखा गया, तो नई दिल्ली के साथ उनके रिश्ते बिगड़ सकते हैं। वैसे भी, कूटनीति का तकाजा यही है कि द्विपक्षीय रिश्तों पर जोर दिया जाए, जिसमें किसी तीसरे मुल्क की दखलंदाजी उचित नहीं।ऐसे मामलों में कैदियों की रिहाई की अपनी चुनौतियां होती हैं। बेशक, वियना कन्वेंशन जैसे प्रावधानों के तहत राजनयिकों, दूतावास-कर्मियों या राजनीतिज्ञों को विशेषाधिकार प्राप्त होता है, लेकिन जब कोई किसी तीसरे देश की सेवा करते हुए कानूनी गिरफ्त में आता है, तो दूतावास के हाथ भी बहुत खुले नहीं रहते। इन पूर्व भारतीय सैनिकों के साथ भी यही दिक्कतें थीं। वे ओमान की कंपनी दहरा ग्लोबल के लिए काम कर रहे थे, जिसने इस मामले के तूल पकड़ने के बाद कतर से अपना कारोबार समेटना शुरू कर दिया था।

ब्रिटेन, अमेरिका जैसे देशों में जब ऐसे मामले आते हैं, तो वहां सिर्फ अंतरराष्ट्रीय प्रावधानों का पालन होता है, लेकिन खाड़ी या एशियाई जैसे परंपरागत देशों में आपसी रिश्ते भी काफी काम करते हैं। ऐसा लगता है कि इन भारतीयों के मामले में यह प्रयास दो मोर्चे पर किया गया। एक, राष्ट्र के स्तर पर और दूसरा, निजी रिश्तों की बुनियाद पर। एक राष्ट्र के तौर पर भारत अपने नागरिकों की रिहाई को लेकर संकल्पित तो था ही, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की विदेशी राष्ट्राध्यक्षों या शासनाध्यक्षों को मित्र बनाने की शिफत भी इसमें मददगार साबित हुई। अपनी वाक्पटुता के लिए मशहूर भारतीय नेतृत्व ने कतर को यह समझाने में सफलता हासिल की कि किसी फर्जी तथ्यों की वेदी पर आपसी रिश्तों की बलि नहीं दी जानी चाहिए। मैं खुद कई अरब देशों में रह चुका हूं, और मुझे पता है कि वहां के लोग भारत पर कितना विश्वास करते हैं। वहां भारतीय व्यापारी ही नहीं, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षकों की भी खूब इज्जत की जाती है। वे कूटनीति के बजाय 'दोस्ती की भाषा' पर विश्वास करते हैं। पूर्व भारतीय नौसैनिकों की यह रिहाई उसी भरोसे का प्रतिफल है। हालांकि, ऐसा नहीं है कि हमने ऐसी उपलब्धि पहली बार हासिल की है। पूर्व में भी कई बार हमने अपने लोगों की सुरक्षा सुनिश्चित करवाई है।

बहरहाल, इस मामले को एक सबक के रूप में भी देखना चाहिए, खासकर भारत के उन राजनीतिक विश्लेषकों या सियासतदानों को, जो राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देश की छवि से खेलने का प्रयास करते रहते हैं। उनको समझना होगा कि जहां देश के हित की बात है, वहां नकारात्मक बातों से दूरी बरतनी चाहिए। जब तक मसला हल न हो जाए, हमें अपने देश की सरकार की मदद करनी चाहिए। यह दुखद था कि भारत में अल्पसंख्यकों के साथ कथित तौर पर होने वाले भेदभाव को दुनिया भर में प्रसारित किया गया। यह भी कहा गया कि आतंकवाद के खिलाफ नई दिल्ली इजरायल के साथ है। इन सबसे भारत-कतर की बातचीत पर असर पड़ा। चूंकि, खाड़ी के देशों में भारत की अपनी अलग पहचान है, इसलिए नकारात्मक सोच रखने वाले इन लोगों को उचित जवाब मिला है। वैसे, हमारे लिए एक बड़ी चुनौती गाजा संकट में कतर द्वारा मुख्य भूमिका निभाने की मंशा भी थी और अमेरिकी खुफिया एजेंसी सीआईए की मौजूदगी भी। बावजूद

इसके यदि हमने सफलता हासिल की है, तो समझा जा सकता है कि इस मामले में आपसी रिश्ते ने कितनी बड़ी भूमिका निभाई है।

यह सफलता भविष्य में हमारे काफी काम आ सकती है। आंकड़ों की मानें, तो दुनिया के 89 देशों में करीब 9,500 भारतीय कैद हैं। ज्यादातर कैदी पश्चिम एशियाई जेलों में हैं। आंकड़े बताते हैं कि सऊदी अरब में 2,200, तो संयुक्त अरब अमीरात में 2,143 कैदी विभिन्न मामलों में सजायाफ्ता हैं। कतर में 752, कुवैत में 410 और बहरीन में 310 भारतीय अलग-अलग मामलों में जेल की सजा काट रहे हैं। चूंकि इन पूर्व नौसैनिकों की रिहाई में यह देखा गया कि हमारा शीर्ष राजनीतिक नेतृत्व सिर्फ विदेश मंत्रालय के भरोसे नहीं रहा, बल्कि उसने व्यक्तिगत रुचि लेकर इनकी रिहाई सुनिश्चित करवाई, इसलिए आगे भी प्रधानमंत्री विदेशी जेलों में बंद एक-एक भारतीय की सुध लेंगे। आने वाले दिनों में यदि हम अन्य भारतीयों की रिहाई के गवाह बने, तो अचरज नहीं होना चाहिए। इसमें अंतरराष्ट्रीय प्रावधान भी हमारी मदद करते रहेंगे। फिलहाल, भारतीय दूतावास उन मामलों में विशेष सक्रियता दिखाते हैं, जिनमें अपराध की गंभीरता कम होती है। ऐसे मामलों में बाकी सजा अपने देश में काटने या अपील करने की सुविधा कैदियों को मिल जाती है। स्वेदश में अपील करने का हक भी इसमें मिलता है, जो कैदियों के काफी काम आता है।

एक बात और, अपनी संस्कृति से हमारा जुड़ाव भी खाड़ी या अरब देशों में हमें खास बनाता है। मुझे सन् 1971 के युद्ध के बाद का दौर याद आता है, जब पाकिस्तानी निजाम अरब देशों से मदद मांगने गए थे। मगर उन्हें इसलिए खाली हाथ लौटना पड़ा, क्योंकि वे भरोसे के काबिल नहीं समझे गए। ऐसा इसलिए, क्योंकि वे पूर्वी पाकिस्तान में रहने वाले बांग्लाभाषी मुसलमानों को कोस रहे थे। हमारी सभ्यता ऐसा करने की हमें इजाजत नहीं देती, इसलिए अरब देशों में हमारा एक मुकाम है। लगता है, इस सोच ने भी भारतीय कैदियों की रिहाई में मदद की है।

Date:13-02-24

तरक्की में कुछ आगे निकले सूबों की बढ़ती शिकायत

एस. श्रीनिवासन, (वरिष्ट पत्रकार)

दक्षिणी राज्यों ने वित्तीय संघवाद पर फिर नाखुशी जताई है। केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु और तेलंगाना शिकायत कर रहे हैं कि उनकी वित्तीय आजादी छिन गई है, उनकी अपनी कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने की क्षमता सीमित हो गई है। अपेक्षाकृत आर्थिक रूप से बेहतर दक्षिणी की ओर से विरोध प्रदर्शन ऐसे समय में आया है, जब देश आम चुनाव की ओर बढ़ रहा है।

दक्षिण के चार राज्यों में से कर्नाटक और केरल दिल्ली की सड़कों पर भी उतर आए। वे सभी इसे अपने अधिकार का मुद्दा, स्व-शासन का मुद्दा बनाने की भी कोशिश कर रहे हैं। केंद्र सरकार को इस पर ध्यान देना होगा। प्रधानमंत्री ने राज्यसभा में इस कदम पर तीखा पलटवार किया है। उधर, तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम के स्टालिन का कहना है कि जीएसटी से पहले और जीएसटी के बाद के शासन की तुलना में राज्य के वित्त पर 20,000 करोड़ रुपये का सीधा असर पड़ा है। केरल के वित्त मंत्री का कहना है कि उनका राज्य 2023-24 में केंद्रीय हस्तांतरण और ऋण मंजूरी में 57,000

करोड़ रुपये से वंचित रह गया। कर्नाटक के मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने रणनीति के तहत एक नारा ही गढ़ दिया है, 'मेरा कर, मेरा हक' और पिछले सप्ताह उन्होंने वित्तीय स्वतंत्रता की मांग करते हुए अपने मंत्रिमंडल के साथ दिल्ली में डेरा डाल दिया था। सिद्धारमैया अतिरिक्त दबाव में हैं, क्योंकि उन्होंने चुनाव के समय 50,000 करोड़ रुपये की योजनाओं की घोषणा की थी और अब पर्याप्त धन के अभाव में मुश्किल हो रही है। इस बीच, तेलंगाना के नवनियुक्त मुख्यमंत्री रेवंत रेड्डी ने भी नीति आयोग को ज्ञापन सौंपकर राज्य को अधिक धन देने की मांग की है।

समस्या की जड़ केंद्र और राज्यों द्वारा राजस्व संसाधनों को साझा करने के तरीके में निहित है। गौर करने की बात है कि केंद्र और राज्यों के बीच धन का हस्तांतरण केंद्र द्वारा हर पांच साल में गठित वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर किया जाता है। 15वें वित्त आयोग की सिफारिशें 2025 तक वैध हैं। केंद्र सरकार ने 16वें वित्त आयोग का भी गठन कर दिया है, जो अगले पांच वर्षों के लिए अपनी सिफारिशें देगा।

केंद्र और राज्यों द्वारा एकत्र प्रत्यक्ष और परोक्ष करों को वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार, एक साथ रख दिया जाता है और उसके बाद वितरण होता है। 14वें और 15वें वित्त आयोग ने शुद्ध कर राजस्व के रूप में क्रमश: 42 प्रतिशत और 41 प्रतिशत के हस्तांतरण की सिफारिश की थी। यह सिफारिश पिछले वित्त आयोगों द्वारा की गई सिफारिशों से कहीं अधिक है और प्रधानमंत्री अपने भाषणों में इसका जिक्र करते रहते हैं।

दरअसल, सकल संग्रह अधिक है और राज्यों के साथ शुद्ध कर संग्रह ही साझा होता है, जो कम है। विगत पांच वर्ष को देखें, तो साल 2023-24 में केंद्र का सकल कर राजस्व 14.6 लाख करोड़ रुपये से बढ़कर 33.6 लाख करोड़ रुपये हो गया, जबकि केंद्रीय कर राजस्व में राज्यों का हिस्सा 5.1 लाख करोड़ रुपये से बढ़कर 10.2 लाख करोड़ रुपये हो गया है। दूसरे शब्दों में कहें, तो राज्यों का हिस्सा दोगुना और केंद्र का हिस्सा दोगुने से अधिक हो गया है। इसके अलावा, केंद्र उपकर और अधिभार का अपना संग्रह राज्यों के साथ साझा नहीं करता है।

केरल और तमिलनाडु को यह अतिरिक्त शिकायत भी है कि उनके बजट के बाहर के ऋण (राज्य के स्वामित्व वाले उपक्रमों द्वारा लिए गए ऋण) को नेट उधार सीमा के तहत शामिल किया गया है, इससे इन राज्यों की ऋण लेने की क्षमता सीमित हो गई है। जहां दक्षिण के राज्यों को शिकायत है, वहीं उत्तर भारत के भाजपा शासित राज्य शिकायत नहीं करते हैं, क्योंकि उनमें से अधिकांश में सामाजिक विकास सूचकांक कम है और आबादी अधिक है। चूंकि दक्षिणी राज्य इन सभी कारकों में अच्छा प्रदर्शन करते हैं, इसलिए उन्हें वित्त आयोग की शर्तों की वजह से कम हिस्सा मिलता है। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु को प्रति एक रुपये के बदले 49 पैसे मिलते हैं।

समाधान क्या है? 16वें वित्त आयोग की सिफारिशों में बेहतर विकसित दक्षिणी राज्यों की मांगों का ध्यान रखना चाहिए और उन्हें आश्वस्त करना चाहिए कि उन्हें उनके अच्छे काम के लिए दंडित नहीं किया जा रहा है।